व० प० सं०-12;

उत्तरांचल क्षेत्र में निर्वनीकरण और ग्रामीण स्त्रियों की समस्यायें

प्रताप सिंह गढ़िया

गिरि विकास अध्ययन संस्थान, सेक्टर "ओ", अलीगंज लखनऊ

व.प.सं0 - 12

उत्तरांचल क्षेत्र में निर्वनीकरण और ग्रामीण स्त्रियों की समस्यायें

प्रताप सिंह गढ़िया

गिरि विकास अध्ययन संस्थान, सेक्टर "ओ", अलीगंज, लखनऊ।

उत्तरांचल क्षेत्र में निर्वनीकरण और ग्रामीण स्त्रियों की समस्यायें

प्रताप सिंह गढ़िया ×

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

उत्तरांचल क्षेत्र में पर्यावरण का मूल कारण वनों का अन्धाधुन्ध कटान रहा है। अंग्रेजों के शासनकाल में वनों का बहुत बड़े पैमाने पर दोहन हुआ है। अंग्रेजों की दृष्टि वनों से अधिक राजस्व कमाने भर की थी। इसलिए उन्होंने वन नीति भी उसी के अनुरूप बनायी थी। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से देखने पर भी यह बात स्पष्ट होती है कि वन विभाग स्थापना व्यापारिक उद्देश्य से की गयी थी। पियर्सन (1863) ने भी लिखा है कि भारतीय वन व्यवस्था के इतिहास में रेलवे निर्माण का महत्वपूर्ण स्थान है रेलवे प्रसार के प्रारम्भिक दिनों में वनों के भारी विनाश के दबाव ने 1864 में जर्मन विशेषज्ञों की सहायता से वन विभाग की स्थापना की, जिसका मुख्य कार्य रेलवे स्लीपर बनाने के लिए मजबूत व टिकाऊ लकड़ी जैसे – साल, टीक तथा देवदार के क्षेत्रों का पता लगाना था। ब्रान्डिस (1879) ने लिखा है कि सन् 1865 से 1878 के बीच 13 लाख देवदार के स्लीपर यमुना घाटी से

× गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ।

1– प्रस्तुत लेख के आंकड़े लेखक के शोध निबन्ध कृषि क्षेत्र में स्त्री श्रमिकों का योगदान व समस्यायें (उ0प्र0 के पर्वतीय अंचल का एक क्षेत्रीय अध्ययन) पर आधारित है।

2– लेखक गिरि विकास अध्ययन संस्थान के प्रोफेसर अजीत कुमार सिंह द्वारा इस लेख में दिये गये सुझावों का आभारी है।

निर्यात किये गये। देवदार के इन वनों में लगातार और तेजी से हुए कटान ने सरकार को यूरोप से स्लीपर आयात करने को मजबूर कर दिया। लेकिन आयातित स्लीपरों के स्थान पर देशी स्लीपरों पर (विशेषकर उत्तर भारत के प्रयोग पर) बल दिये जाने पर वन विभाग द्वारा हिमालयी चीड़ के इस्तेमाल होने पर ध्यान दिया गया, यदि यह रोगाणुरोधी उपचार में अनुकूल निकल सकें।

मलकानियां (1992) ने भी लिखा है कि 1850 से सदी के अन्त तक देवदार की लकड़ी के एक लाख से अधिक स्लीपरों की उत्तरांचल से आपूर्ति की गयी। सन् 1892 में चीड़ की लकड़ी को दीमक से बचाने की खोज के साथ चीड़ की लकड़ी का रेलवे स्लीपरों के रूप में उपयोग किया जाने लगा। गुहा (1986) ने स्माइथीज व स्टेब्रिंग को उद्धरित करते हुए लिखा है कि स्लीपरों के लिये वनों का व्यापारीकरण होने के कुछ वर्षों बाद हिमालय क्षेत्र के वन आर्थिक वरदान हो गये। सन् 1890 में चीड़ के पेड़ों से लीसा टिपान प्रारम्भ हुआ और 1920 में 64000 कुन्टल लीसा और 240000 गैलन तारपीन उत्पादन देश की आवश्यकता से अधिक होने लगा और लीसे तथा तारपीन को इंग्लैण्ड व सुदूर पूर्व को निर्यात करने पर विचार होने लगा।

जहाँ एक ओर रेलवे स्लीपरों के लिये वनों का दोहन बढ़ने लगा वहीं दूसरी ओर स्थानीय लोगों के वन अधिकार सीमित होते गये। गुहा (1986) के अनुसार सन् 1893 के वन अधिनियमानुसार समस्त रिक्त भूमि जो ग्रामीणों की नाप भूमि के अन्तर्गत नहीं था या पहले के आरक्षित वनों को संरक्षित वन घोषित किया गया। इस प्रकार तब संरक्षित वन्य क्षेत्र से बाहर बर्फीले शिखरों, घाटियों, तालाबों, मन्दिरों की भूमि, चारागाहों, सड़कों व इमारतों व

व दुकानों की भूमि तक फैल गये तथा ग्रामीणों द्वारा किसी भी प्रकार के वन उत्पादों का व्यापार निषिद्ध कर दिया गया।

स्वतंत्रोपरान्त स्थिति :

स्वतंत्रता के बाद भी जहां सरकार की अव्यावहारिक वन नीति से वन विनाश पर कोई अन्तर नहीं आया है वहीं दूसरी ओर स्थानीय लोग भी वन विनाश के लिये कम दोषी नहीं हैं। इस सम्बन्ध में मलकानियाँ (1992) लिखती है कि बांज के जंगलों के दोहन के लिये सरकारी व निजी ठेकेदारों से अधिक गांव के लोग जिम्मेदार हैं क्योंकि इसकी लकड़ी को खेतों में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों को बनाने तथा जलाऊ लकड़ी के रूप में तथा पत्तियों को चारे के रूप में इस्तेमाल किया गया। इस क्षेत्र में मानव व पशुओं की आबादी में वृद्धि होने के साथ ही बांज की लकड़ी व पत्तियों पर दबाव बढ़ता चला गया है।

आजादी के बाद 1960 के दशक में जब मध्य हिमालय क्षेत्र में जमीन का बन्दोबस्त चला तो अंग्रेजों के शासन से चले सिविल वनों पर जिन लोगों ने घेरबाड़ कर रखा था, को उनके कब्जे के आधार पर पट्टे दिये गये जिसको बाद में वर्ग 5 की जमीन के नाम से जाना जाता है। जब सिविल वन भूमि में लोगों द्वारा नाजायज कब्जा करने पर पट्टा दिया गया तो गांव के अन्य लोगों ने भी शेष बची भूमि पर अतिक्रमण कर और उसमें स्थित चारे पत्ती व इमारती लकड़ी व छोटी वनस्पतियों, जलाऊ लकड़ी व जानवरों के बिछौने के लिये वनों का विदोहन किया गया। वर्तमान में यद्यपि सरकारी रिकार्ड में हिमालय क्षेत्र के गाँवों में हजारों हैक्टर सिविल भूमि व वन भूमि दर्ज है लेकिन व्यवहार में नाम मात्र गाँवों में ही सिविल भूमि शेष बची है। विगत कुछ वर्षों में सिविल भूमि के अतिक्रमण के बाद पंचायती वनों पर भी गांव के शक्तिशाली लोगों

द्वारा अतिक्रमण प्रारम्भ हो गया है। इसके अलावा वन विभाग के कर्मचारियों से मिली-भगत करके सरकारी वनों पर भी अतिक्रमण की छाया पड़ने लगी है।

बढ़ती आबादी ने भी वन दोहन को प्रोत्साहित किया है। इस सम्बन्ध में पन्त (1992) ने भी लिखा है कि आबादी बढ़ने के साथ-साथ खेती का विस्तार हुआ। खेती नदी तलहटियों से पहाड़ियों के ढालों से चोटी तक फैल गयी तथा बांज व चौड़े पत्ती वाले पेड़-पौधों को काटकर चाय व सेब के बाग लगने प्रारम्भ हुए। नगरों का विकास समतल घाटियों में स्थित कस्बों में होने लगा और आवागमन के लिये सड़कों का निर्माण हुआ। इससे वन, चारागाह और खेती की भूमि में कमी आयी तथा सड़क के मलवे से बड़े क्षेत्र बेकार होते चले गये।

तालिका संख्या-1 में वनों पर जनसंख्या के बढ़ते दबाव को दर्शाया गया है। तालिका से ज्ञात होता है कि सन् 1901 में इस क्षेत्र की जनसंख्या 16.5 लाख थी जो सन् 1951 में बढ़कर 25.2 लाख हो गयी। लेकिन सन् 1951 के पश्चात् जनसंख्या वृद्धि दर में तीव्रता आयी है और 1951 से 1991 के बीच जनसंख्या वृद्धि 133.28 प्रतिशत हुई है। दूसरी तरफ सरकारी आंकड़ों के अनुसार वन्य क्षेत्र 1901 से 1941 तक लगभग स्थिर था। लेकिन 1941 व 1951 के दशक में वन्य क्षेत्र में काफी गिरावट आयी है। तत्पश्चात् नियोजन काल में वन्य क्षेत्र निरन्तर बढ़ा है, यद्यपि प्रतिव्यक्ति वन्य क्षेत्र लगभग स्थिर रहा है। प्रति-व्यक्ति वन्य क्षेत्र, जो शताब्दी के प्रारम्भ में 1.59 हैक्टर था वह अब केवल 0.59 हैक्टर रह गया है। उल्लेखनीय बात यह है कि सरकारी आंकड़े वनों की वास्तविक स्थिति को प्रदर्शित नहीं करते हैं। रिमोट सेंसिंग आंकड़ों के आधार पर उत्तराखण्ड का वास्तविक वन क्षेत्र केवल 22.54 लाख हैक्टर है जो कि सरकारी वन क्षेत्र के आंकड़ों की तुलना में केवल 65.7 प्रतिशत है और इस क्षेत्र के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 44.08 प्रतिशत है।

इसमें घने वनों से आच्छादित क्षेत्रफल केवल 7.5 लाख हैक्टर है जबकि 5.0 लाख हैक्टर खुला वन क्षेत्र है
(सिंह 1995).

तालिका संख्या - 1

उत्तराखण्ड : वनों पर जनसंख्या का बढ़ता दबाव -

वर्ष	जनसंख्या		वन्य क्षेत्र		
	कुल (लाख में)	दशाकीय वृद्धि दर	कुल (लाख हैक्टर)	दशाकीय वृद्धि दर	प्रतिव्यक्ति वन्य क्षेत्र (हैक्टर में)
1901	16.50	-	26.17	-	1.59
1911	18.31	10.97	25.99	- 0.69	1.42
1921	18.20	-0.60	25.99	0.00	1.43
1931	19.71	8.30	25.99	0.00	1.32
1941	22.41	13.70	25.99	0.00	1.16
1951	25.18	12.36	12.78	-50.83	0.51
1961	31.06	23.35	18.34	43.51	0.59
1971	38.22	23.05	23.78	29.66	0.62
1981	48.35	26.50	30.99	30.32	0.64
1991	58.74	21.49	34.38	10.94	0.59

स्त्रोत - 1. सेन्सस ऑफ इण्डिया 2. वन विभाग उ0प्र0 की वन सांख्यिकीपत्रिका

कुल मिलाकर हिमालय क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या, कृषि की न्यून उत्पादकता, रोजगार के साधनों की कमी, अनियमित पशुचारण, बाँध व सड़कों का निर्माण, वनों में आग लगने की परम्परा, व्यापारिक फसलों का उत्पादन, गलत भूमि उपयोग, औद्योगिक उत्पादन, स्थानीय लोगों के लिये

सामाजिक सुविधाओं [सड़क, स्वास्थ्य, शिक्षा, सम्पर्क मार्ग, पैदल पुल, संचार, बिजली, ईंधन, चारा एवं खेती की जरूरतों] के हेतु वनों का अत्यधिक कटान हुआ है। इसका प्रभाव हुआ है कि हर वर्ष बाढ़, सूखा, भूस्खलन, मिट्टी के क्षरण व लवणीकरण, दलदली भूमि, जानवरों व पेड़-पौधों की प्रजातियों का नष्ट होना या लुप्त होना, जल स्त्रोतों का सूखना, घास चारे व ईंधन का अभाव के साथ-साथ मौसम में भी कुछ वर्षों से बदलाव नजर आ रहा है। इसका जहां एक ओर लोगों के सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन पर बुरा असर पड़ा है वहीं दूसरी ओर लोगों के कष्टों में वृद्धि हुई है। [कुकसाल 1992]

वनीय पर्यावरण पर स्त्रियों की निर्भरता :

हिमालयी क्षेत्र में वनों के विनाश का सबसे ज्यादा प्रभाव स्त्रियों पर पड़ा है क्योंकि हिमालयी क्षेत्र में परिवार के संचालन का मुख्य आधार स्त्रियां हैं। इस सम्बन्ध में भट्ट [1981] तथा बिष्ट [1987] लिखते हैं कि पशुपालन व परम्परागत कृषि की मुख्य जिम्मेदारी स्त्रियों पर हैं। यहां की कृषि और उसके लिए बहुत आवश्यक पशुपालन-इन दोनों का आधार जंगल है। इसके लिए यहां की स्त्रियां वनों के सुख में सुखी और दुख में दुखी होती हैं पशुओं के लिए जंगल से चारा पत्ती काटकर लाना, जानवरों को खुली चराई के लिए छोड़ना, जंगल से जानवरों का बिछौना लाना ताकि खेतों के लिए कम्पोस्ट खाद बनायी जा सके, कृषि औजार-हल, जुआ, दराती, फावड़ा, कुल्हाड़ी, कुदाली, घास लाने का डण्डा आदि जंगलों से प्राप्त होता है। नये घरों के निर्माण व पुराने घरों के मरम्मत के लिए इमारती लकड़ी के लिए जंगलों पर निर्भर रहना पड़ता है। अनाज रखने के लिए सन्दूक तथा मट्ठा बनाने के विभिन्न प्रकार के बर्तनों को भी जंगल से प्राप्त किया जाता है। जानवरों को बांधने के खूंटे व रस्सी को भी जंगल से प्राप्त किया जाता है।

स्त्रियां जंगल से अखरोट व कपासी एकत्रित करती हैं तथा हिसालू, किरमड़, घिंघार, बेड़ू, काफल आदि जंगली फल उनके भूखे पेट को सहारा पहुँचाते हैं। ईंधन व छिलके की आपूर्ति भी जंगलों से होती है। हिमालयी क्षेत्र में लड़की के शादी के समय भी जंगल व पानी के बारे में विचार होता है। माँ-बाप उस गाँव में लड़की देने को तैयार होते हैं जहां आस-पास में जंगल होते हैं।

निर्वनीकरणजनित स्त्रियों की समस्यायें :

मध्य हिमालय क्षेत्र में वनों के अन्धाधुन्ध कटान से विगत वर्षों में ग्रामीण स्त्रियां जोकि अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, की समस्याओं में निरन्तर वृद्धि हुई है। प्रस्तुत लेख हमने जो उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अंचल के स्त्रियों की भूमिका व समस्याओं पर शोध किया है, के आधार पर निरूपित किया गया है। सन् 1993-94 में किये गये इस अध्ययन का क्षेत्र, अल्मोड़ा जनपद के - गडेरा, ऐंठान व लोली चमोली जनपद के - पैठाणी, चौण्डा व तुंगेश्वर गाँव हैं। अध्ययन प्राथमिक सर्वेक्षण पर आधारित है। सर्वेक्षण घाटी वाले, मध्यम ऊंचाई वाले तथा अधिक ऊंचाई वाले गाँव की दृष्टि से किया गया है।। तीनों प्रकार के गाँवों की स्त्रियों की समस्यायें लगभग समान होने पर भी भूमि जोत के आधार पर आंकड़ों को तालिकाबद्ध करते हुए इस लेख के माध्यम से ग्रामीण स्त्रियों की मुख्य समस्याओं को उजागर कर उनके समाधान के सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

तालिका संख्या - 2 में उत्तरदाताओं की मुख्य समस्याओं को दर्शाया गया है। तालिका से ज्ञात होता है कि हमारे कुल चयनित परिवारों में से लगभग 69.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने चारागाह की समस्या, लगभग 76.0 प्रतिशत ने जलाऊ लकड़ी की समस्या तथा लगभग 17. 0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पेयजल की समस्या बतायी है। भूमि जोत के अनुसार जहां

बड़ी जोत आकार को शत-प्रतिशत स्त्रियां चारागाह की समस्या को उजागर कर रही हैं वहीं छोटी जोत में जलाऊ लकड़ी व पेयजल की समस्या को अधिक बता रही है।

तालिका संख्या - 2

समस्यायें	1.0 एकड़ से कम	1.0-2.5	2.5-5.0	5.0+	कुल
1- चारागाह की समस्या	69 (70.4)	39 (69.6)	11 (52.4)	5 (100.0)	124 (68.9)
2- जलाऊ लकड़ी की समस्या	88 (89.8)	38 (67.9)	8 (38.1)	3 (60.0)	137 (76.1)
3- पेयजल समस्या	21 (21.4)	8 (14.3)	1 (4.8)	1 (20.0)	31 (17.2)
कुल चयनित परिवार	98	56	21	5	180

टिप्पणी : कोष्ठक में दिये गये अंक कुल उत्तरदाताओं से प्रतिशत को दर्शाते हैं।

घास काटने की समस्या :

पर्वतीय क्षेत्र में घास व अन्य चारे की व्यवस्था स्त्रियों द्वारा अपने खेतों या जंगलों से की जाती है। अपने खेतों के अन्तर्गत ग्राम समाज (कामन प्रापर्टी) की भूमि में किया अवैध कब्जा तथा नाप भूमि के मेड़ों में उगने वाली घास आती हैं। पर्वतीय क्षेत्र में लगभग सभी परिवारों द्वारा ग्राम समाज की भूमि में अवैध कब्जा करके घास उगाई जाती है। बरसात से पूर्व अवैध भूमि पर कांटेदार झाड़ियों को काटकर घेरबाड़ कर दिया जाता है लेकिन अब इस प्रकार की भूमि पर बारहों मास बन्दी की प्रवृति पाई गयी है।

साधारणतया इस प्रकार की जमीन में उगाई गई घास को जाड़ों के दिनों में सुखाकर जानवरों को खिलाया जाता है। वर्ष के अन्य महीनों में स्त्रियां जंगल से घास, बांज व अन्य वनस्पतियों को जानवरों के चारे के लिए दूर-दूर के जंगलों से काटकर लाती हैं। ग्राम समाज की भूमि में होते जा रहे अवैध कब्जे के कारण घास की उपलब्धता की दूरी बढ़ती जा रही है।

तालिका संख्या - 3.0 में स्त्रियों द्वारा घास व चारे के एकत्रण में तय की जा रही दूरियों को दर्शाया गया है। हमारे चयनित परिवार की लगभग 60. 0 प्रतिशत स्त्रियां घास काटने के लिए 5 से 7 किलोमीटर तक की दूरियां तय करती हैं तथा मात्र लगभग 1.0 प्रतिशत स्त्रियां 1 कि.मी. से कम तथा लगभग 23.3 प्रतिशत स्त्रियां एक से दो किलोमीटर की दूरी तय कर रही हैं। जंगल के नजदीक घर होने के कारण ये स्त्रियां घास काटने में कम दूरी तय कर रही हैं जबकि शेष स्त्रियां 2 से 5 किलोमीटर की दूरी तय करती हैं। भूमि जोत के आधार पर देखने से ज्ञात होता है कि भूमि जोत की सीमा घटने के साथ-साथ स्त्रियों की घास काटने की दूरियां बढ़ती जाती हैं क्योंकि बढ़ी जोत की स्त्रियां अपने खेतों से भी आपूर्ति कर लेती हैं।

तालिका संख्या - 3

घास काटने में तय की जाने वाली दूरी के अनुसार उत्तरदाताओं का विवरण

दूरी	1.0 एकड़ से कम	1.0-2.5	2.5-5.0	5.0+	कुल
1.0 कि.मी. से कम	-	1 (1.8)	- (20.0)	1 (20.0)	2 (1.1)
1-2 कि.मी	9 (9.2)	18 (32.1)	12 (57.1)	3 (60.0)	42 (23.3)
2-3 कि.मी.	7 (7.1)	5 (8.9)	2 (9.5)	-	14 (7.8)
3-4 कि.मी.	1 (1.0)	2 (3.6)	-	-	3 (1.7)
4-5 कि.मी.	7 (7.1)	4 (7.1)	1 (4.8)	-	12 (6.7)
5-7 कि.मी.	74 (75.6)	26 (46.5)	6 (28.6)	1 (20.0)	107 (59.4)
कुल	98 (100.0)	56 (100.0)	21 (100.0)	5 (100.0)	180 (100.0)

टिप्पणी : कोष्ठक में दिये गये अंक प्रतिशत को दर्शाते हैं।

चारागाह की समस्या :

तालिका संख्या - 4 में पशुओं को चराने में आने वाली समस्याओं को दर्शाया गया है चयनित गाँवों में ग्राम समाज की भूमि, पंचायती वन व सरकारी जंगलों का चारागाह के रूप में उपयोग किया जाता है तथा जब फसल कट जाती है तो उनमें भी जानवरों को चराया जाता है लेकिन भूमि कटाव व खेतों में कंकड़ पत्थर गिरने के भय से खाली खेतों में जानवरों को चराने की प्रवृत्ति में ह्रास हो रहा है। ग्राम समाज की भूमि में किये गये अवैध कब्जे, पंचायती वनों में वनीकरण व बन्दीकरण होने से सड़क के किनारे व सरकारी जंगल ही एकमात्र चारागाह रह गये हैं। हमारे अध्ययन में लगभग 69.0 प्रतिशत स्त्रियों ने चारागाह की समस्या बतायी है चारागाह की समस्या बताने वाली स्त्रियों में लगभग 53.0 प्रतिशत स्त्रियों ने चारागाह आबाद होने की शिकायत की जिससे जानवरों को चराने की समस्या आ रही है। साथ ही लगभग 8.0 प्रतिशत स्त्रियों ने चारागाह तक पशुओं को ले जाने में रास्ते की समस्या बतायी है और लगभग 4.0 प्रतिशत स्त्रियों ने पनघट आबाद होने की शिकायत की। लगभग 13.0 प्रतिशत स्त्रियों ने चारागाहों में वनीकरण करने से जानवर चराने की समस्या बतायी। जहाँ पशुओं को चराने में समस्या आ रही है वहीं दूसरी तरफ चारागाह के अभाव में लगभग 9.0 प्रतिशत स्त्रियों ने पशुओं की संख्या घटने की समस्या बतायी तथा लगभग 13.0 प्रतिशत स्त्रियों ने बरसात के दिनों में चारागाह न होने से पशुओं को घर में ही रहने की समस्या से अवगत कराया। भूमि जोत के अनुसार जहाँ लघु व मध्यम जोत आकार की स्त्रियाँ चारागाह व पनघट आबाद होने की समस्या बताती हैं। वहीं दूसरी तरफ सीमान्त जोत आकार की स्त्रियाँ उपरोक्त सभी समस्याओं से ग्रस्त हैं।

तालिका संख्या - 4

चारागाह की समस्या के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं का विचार

समस्यायें	1.0 एकड़	1.0-2.5	2.5-5.0	5.0+	कुल
1- चारागाह आबाद होना	33 (41.3)	30 (68.2)	7 (58.4)	5 (83.3)	75 (52.8)
2- चारागाह तक जानवरों को ले जाने के रास्त को समस्या	8 (10.0)	3 (6.8)	-	-	11 (7.8)
3- चारागाह को कमी से पशु संख्या घटना	8 (10.0)	3 (6.8)	1 (8.3)	-	12 (8.5)
4- बरसात के मौसम में पशु चारागाह आबाद होने से पशुओं को घर पर रखना	17 (21.2)	2 (4.6)	-	-	19 (13.4)
5- पनघट आबाद होना	1 (1.2)	3 (6.8)	1 (8.3)	1 (16.7)	6 (4.1)
6- चारागाह में वनीकरण होना	13 (16.3)	3 (6.8)	3 (25.0)	-	19 (13.4)
कुल	80 (100.0)	44 (100.0)	12 (100.0)	6 (100.0)	142 (100.0)

टिप्पणी : कोष्ठक में दिये गये अंक बहुविकल्पीय उत्तरों के योग से प्रतिशत को दर्शाते हैं।

जलाऊ लकड़ी को समस्या :

ठन्डी जलवायु के कारण पर्वतीय क्षेत्र में जलाऊ लकड़ी की अत्यधिक आवश्यकता होती है। सिविल भूमि के वनों को काटकर उसमें खेती करना तथा पंचायती वनों में अनाप शनाप लकड़ी काट देने से आज पर्वतीय क्षेत्र में जलाऊ लकड़ी को समस्या

दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है तथा स्त्रियां मीलों दूर जाकर सिर व पीठ में ढोकर जलाऊ लकड़ी ला रही हैं। चिपको आन्दोलन के जन्मदाता चण्डी प्रसाद भट्ट (1981) ने भी लिखा है कि पिछले दो तीन दशकों में कई गांवों में जंगल गायब हो गये हैं। इसलिए स्त्रियों का अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आठ दस किलोमीटर दूर तक जाना पड़ता है। चट्टानों एवं पहाड़ों पर घास व लकड़ी का बोझ पीठ पर ढोना पड़ता है। चट्टानी रास्तों में छोटी सी असावधानी होने पर गिर जाती है। समय पर खाना व बच्चों की देखभाल नहीं कर पाती है। कुण्ठा, घुटन, चिड़चिड़ापन व थकान उनके स्वभाव का अंग बन जाता है। जिसका उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इन महिलाओं के कष्ट जहां पास में जंगल नहीं होते हैं और उन्हें जंगल तक पहुँचन के लिये प्रातः 4 बजे भूखे पेट ही लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है तथा वे जंगल से मिले गांव की स्त्रियों से तुलना करती हैं तो वे अपनी व्यथा जंगल के करूण क्रन्दन संगीत के रूप में गाकर प्रकट करती हैं।

हमारे अध्ययन में भी लगभग 76.0 प्रतिशत स्त्रियां जलाऊ लकड़ी की समस्या से ग्रस्त हैं। घाटी वाले व मध्यम ऊँचाई वाले गांवों में वह समस्या ज्यादा विकट देखी गयी है। तालिका संख्या 5 को देखने से ज्ञात होता है कि सीमान्त जोत के परिवार की स्त्रियां लघु व मध्यम क्षेत्र के जोत आकार कीस्त्रियों की तुलना में जलाऊ लकड़ी की समस्या अधिक बतातीहैं क्यों कि बड़े जोत परिवार की स्त्रियां अपने खेतों व अवैध कब्जे वाली भूमि में जलाऊ लकड़ी व पेड़ों से भी लकड़ी की आपूर्ति कर लेती हैं। जिन स्त्रियों ने जलाऊ लकड़ी की समस्या बताई है उनमें से लगभग 48.0 प्रतिशत जलाऊ लकड़ी की दूर-दूर उपलब्ध होने की समस्या बताती हैं जबकि लगभग 16.0 प्रतिशत स्त्रियां पंचायत वन से मँहगे लकड़ी खरीदने व लगभग 6.0 प्रतिशत स्त्रियां, स्त्रियों के काटने वाली लकड़ी का अभाव बताती हैं, शेष स्त्रियां सरकारी व पंचायत वन से लकड़ियों की चोरी, दूसरे गांव के लोगों द्वारा अपने वनों से लकड़ी काटने का विरोध तथा

जंगल से अच्छे जलाऊ लकड़ी के अभाव में सड़ी-गली लकड़ी बीन कर लाने की समस्या बताती हैं।

तालिका संख्या - 5

जलाऊ लकड़ी के समस्या के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

समस्यायें	1 एकड़ से कम	1.0-2.5	2.5-5.0	5.0+	कुल
1- सरकारी व पंचायती वन से ईंधन चोरी करना।	7 (6.8)	5 (11.6)	-	2 (40.0)	14 (8.8)
2- पंचायत वन से महंगे पेड़ों का मिलना	11 (10.7)	10 (23.3)	2 (22.2)	2 (40.0)	25 (15.6)
3- स्त्रियों के काटने वाले लकड़ियों का अभाव	4 (3.9)	3 (7.0)	1 (11.1)	1 (20.0)	9 (5.6)
4- लकड़ियों का दूर-दूर उपलब्ध होना	53 (51.5)	18 (41.9)	5 (55.6)	-	76 (47.5)
5- दूसरे गांव के द्वारा लकड़ी ले जाने पर विरोध	2 (1.9)	-	-	-	2 (1.2)
6- सड़ी गली लकड़ी को बीनकर लाना	26 (25.2)	7 (16.2)	1 (11.1)	-	34 (21.3)
कुल	103 (100.0)	43 (100.0)	9 (100.0)	5 (100.0)	160 (100.0)

टिप्पणी : कोष्ठक में दिये गये अंक बहुविकल्पीय उत्तरों के योग से प्रतिशत को दर्शाते हैं।

पेयजल की समस्या :

प्रारम्भ से ही मनुष्य पर्वतीय क्षेत्र में उन्हीं जगहों पर बसा है जहां

जंगल व पर्याप्त पेयजल उपलब्ध था लेकिन बढ़ती जनसंख्या व वनों के वाणिज्य उपयोग करने के कारण वन विनाश का सीधा प्रभाव आज पेयजल पर पड़ रहा है। बहुगुणा (1989) ने भी लिखा है कि पिछले दो दशकों में शासन की वन नीति और जनसंख्या के बढ़ते दबाव ने वनों में भयानक तबाही की है। इसका सीधा प्रभाव हिमालय की मिट्टी और पानी के स्त्रोतों पर पड़ा है। सारी उपजाऊ मिट्टी मैदानों की ओर बह रही है और पेड़ों के कटान के कारण भूमि की जल धारण शक्ति कम हो गई है। और पानी के स्त्रोत सूखते जा रहे हैं। जिस वजह से पीने के पानी को भरने के लिये काफी फासला तय करना पड़ता है। यद्यपि सरकार द्वारा सभी ग्रामों में सन् 1990 तक पेयजल की समस्या दूर करने का लक्ष्य रखा था लेकिन अभी भी पर्वतीय क्षेत्रों में समस्याग्रस्त गांव है। हमारे चयनित गाँव की लगभग 17.0 प्रतिशत स्त्रियों ने पेयजल की समस्या बतायी है उनमें से लगभग 24.0 प्रतिशत स्त्रियों ने पेयजल का दूर उपलब्ध होना तथा 34.0 प्रतिशत ने गर्मी के दिनों में पेयजल स्त्रोत सूखने की समस्या बतायी। गर्मी के दिनों में पेयजल स्त्रोतों में कमी होने के कारण लगभग 21.0 प्रतिशत स्त्रियों ने पंक्तिबद्ध होकर या क्रम से पेयजल बर्तनों को भरने की बात बतायी जिससे स्त्रियों को अच्छा खासा समय बर्बाद करना पड़ता है। जिन गांवों में जल संस्थान/जल निगम द्वारा पेयजल उपलब्ध कराया जाता है उन गांवों में नलों के टूटने या खराब होने पर ठीक न करने की समस्या लगभग 18.0 प्रतिशत स्त्रियों ने बतायी क्योंकि एक तरफ पेयजल के मूल स्त्रोत से गांवों में नलों के द्वारा पानी घर-घर देने का प्राविधान किया है तो दूसरी तरफ नलों से पेयजल व्यवस्था ठीक न होने के कारण ग्रामवासी मूल जल स्त्रोतों के अभाव के कारण इधर-उधर के पेयजल स्त्रोतों की खोज में लगते हैं जिससे स्त्रियों के कष्टों में वृद्धि होती है। साधारणतया हमारे चयनित गांवों में नहर, गूल, नौला (कुँआ), नदी तथा नलों से पीने का पानी लिया जाता है। साधारणतया बरसात के दिनों में भूस्खलन होने से गूल दब जाती है। जिसके कारण पेयजल लाने के लिये दूर जाना पड़ता है।

हमारे अध्ययन में 2.6 प्रतिशत स्त्रियों ने इस प्रकार की समस्या बताई है।

तालिका संख्या - 6

पेयजल की समस्या के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

समस्यायें	1.0 एकड़ से कम	1.0-2.5	2.5-5.0	5.0+	कुल
1- जल संस्थान/जल निगम द्वारा टूटे नलों को ठीक न करना	3 (11.5)	3 (33.3)	-	1 (50.0)	7 (18.4)
2- गर्मी के दिनों में जल स्त्रोतों का सूख जाना	8 (30.8)	4 (44.5)	1 (100.0)	-	13 (34.2)
3- पेयजल दूर उपलब्ध होना	9 (34.6)	-	-	-	9 (23.7)
4- गर्मी के दिनों में पंक्तिबद्ध होकर पानी प्राप्त होना	6 (23.1)	1 (11.1)	-	1 (50.9)	8 (21.1)
5- बरसात के दिनों में पेयजल गूल का भूस्खलन से टूट जाना	-	1 (11.1)	-	-	1 (2.6)
कुल	26 (100.0)	9 (100.0)	1 (100.0)	2 (100.0	38 (100.0)

टिप्पणी : कोष्ठक में दिये गये अंक बहु विकल्पीय उत्तरों के योग से प्रतिशत को दर्शाते हैं।

सुझाव :

पर्वतीय स्त्रियों की मुख्य समस्यायें वन पर आधारित हैं अतः नीति निर्धारकों व योजनाकारों का परम कर्तव्य हो जाता है कि सर्वप्रथम वनों को गांव के नजदीक लाया जायें। यह तभी सम्भव हो पायेगा जब स्थानीय ग्रामवासियों द्वारा सिविल व पंचायत वनों में किये गये अतिक्रमण को राजनैतिक

आइने से न देखकर व्यवहारिक रूप में हटाया जायँ। ताकि इस भूमि में बांज व चौड़ी चारा पत्ती के पेड़ों को लगाया जा सके, इसके लिये कुछ भूमि वनोकरण तथा कुछ भूमि में जहां भी बांज व चौड़ी पत्ती के पेड़-पौधे शेष बचे हैं, उसमें बन्दीकरण करना उचित होगा।

जानवरों के बिछौने, चारा व जलाऊ लकड़ी के लिये चोड़ व अन्य छोटी-छोटी वनस्पतियों व चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों का उपयोग किया जाता है। यह सामग्री जंगल से अधिक मात्रा में न ली जायँ और जितनी मात्रा में लें उसको भी सावधानी से निकाला व काटा जायँ। क्योंकि जहां एक ओर स्थानीय लोगों द्वारा कम्पोस्ट व जलाऊ लकड़ी व चारे के लिये छोटी-छोटी वनस्पतियों व झाड़ियों का अन्धाधुन्ध कटान से कुछ वनस्पतियां लुप्त होती जा रही हैं, वहीं दूसरी ओर जाड़े में जलाऊ लकड़ी व बरसात में कम्पोस्ट के लिये बांज, छोटी वनस्पति व झाड़ियों को काटने में लोगों में प्रतियोगिता चल रही है। यहां तक की ग्रामवासियों की इस तरह जमा की गयी जलाऊ लकड़ी दीमक लगने से नष्ट हो जाती है अतः प्रत्येक गांव स्तर पर चारा व जलाऊ लकड़ी आवश्यकता का अनुमान लगाना आवश्यक होगा, जिसको ग्राम स्तर पर अध्ययन करके निर्धारित किया जा सकता है।

पशुओं की नस्ल में सुधार व अनावश्यक पशुओं की संख्या में कमी लाना भी आवश्यक होगा साथ ही पशुओं को चराई के स्थान पर घर में खूँटे पर बाँधकर खिलाया जायँ तो इससे चारागाहों की स्थिति तो सुधरेगी साथ ही कृषि भूमि के लिये अधिक गोबर भी इकट्ठा किया जा सकता है। यद्यपि प्रारम्भ में कई मास इन पशुओं को रात दिन खूँटे पर बाँधकर खिलाने में पर्याप्त चारा जुटाना दुष्कर कार्य होगा अतः चारागाहों में इनकी चराई सीमित अर्थात् चार माह (जुलाई से अक्टूबर तक) कर देनी चाहिए तथा चारागाह को चारों तरफ से बन्द रखना चाहिए जिससे चारागाहों को भूक्षरण से दूर रखा जा सके।

उत्तरांचल क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या की रफ्तार को ध्यान में रखते हुए कृषि योग्य भूमि व इसकी आधारीय भूमि का अनुपात निकाला जाना चाहिये ताकि इन क्षेत्रों में जानवरों व मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताओं को समझा जा सके।

सरकारी वनों का यद्यपि सीमांकन किया गया है लेकिन स्थानीय गांव के शक्तिशाली लोगों द्वारा सरकारी कर्मचारियों से मिलकर इसमें भी अतिक्रमण आरम्भ कर दिया है अतः सरकारी वनों से जुड़े गांवों को कुछ वन क्षेत्र देकर पुनः इन वनों का सीमांकन किया जाना चाहिये।

सरकारी वनों से स्थानीय ग्रामीणों को मिलनेवन वन हक़-हकूक के पेड़ों की संख्या में ग्रामवासियों के भवन निर्माण हेतु ईमारती लकड़ी की आवश्यकता अनुसार वृद्धि की जानी चाहिये जहाँ इनमें वृद्धि न होने के कारण सरकारी कर्मचारी निजी लाभ के लिये इमारती लकड़ी ग्रामवासियों को देते हैं वहीं दूसरी ओर गांव के शक्तिशाली लोग जलाऊ लकड़ी के लिये भी इन पेड़ों का दुरूपयोग करते हैं।

उत्तरांचल में देवी देवताओं पर अटूट आस्था है इसलिये जो भी नया वनीकरण किया जायें या पंचायती वनों को देवी देवताओं के नाम कुछ वर्षों के लिये समर्पित किया जाना चाहिये ताकि लोग इनमें अतिक्रमण के साथ-साथ उसमें उपलब्ध पेड़ पौधों का अनावश्यक दोहन न करसकें। यह प्रयोग उत्तरांचल के जनपद अल्मोड़ा के कपकोट विकास खण्ड के गडेरा, जारती व पपोली ग्राम में सफल भी हुआ है।

जब पहाड़ी ढलानों पर बांज व अन्य वनस्पतियों के वृक्षों का वनीकरण होगा और शेष बचे वृक्षों का संरक्षण होगा तो जहाँ भू-क्षरण में कमी आयेगी वहीं दूसरी और पेयजल स्त्रोत बने रहेंगे और स्थानीय लोगों को जल सम्बन्धी विकट समस्या का समाधान भी स्वतः हो जायेगा।

जानवरों के चारे की समस्या के समाधान के लिये अतिक्रमण से मुक्त हुए क्षेत्रों में वनीकरण के साथ-साथ पंचायती वनों में भी घास को पाला जा सकता है। इस कार्य के लिये परम्परा से चली आ रही (नाली पद्धति) चौकीदार की व्यवस्था जो कि अब कम हो गया है, को चलाया जा सकता है।

कोई भी कार्यक्रम बिना जनसहयोग के सम्भव नहीं हो पाता है। लोगों का वनों के प्रति सद्भाव बनाये रखने के लिये उनको सुझाव मंत्रणा व रोजगार में सम्मिलित करना होगा। इस कार्य में पर्वतीय क्षेत्र की जागरूक व समस्याग्रस्त स्त्रियाँ भाग लेने को तत्पर नजर आती हैं।

संदर्भ

1. आनन्द सिंह बिष्ट – उभरती स्त्री शक्ति और वन, हिमालय निवासी और निसर्ग, वर्ष 11, अंक 4, अक्टूबर, 1987

2. उमा मलकानिया – मध्य हिमालयी पर्यावरण : समस्यायें और समाधान, उत्तराखण्ड 6, 1992

3. चन्दी प्रसाद भट्ट तथा शिशुपाल सिंह कुवर – पर्वतीय महिलाओं का जंगल से रिश्ता, हिमालय निवासी और निसर्ग, वर्ष 4, अंक 10, मार्च, 1981

4. रामचन्द्र गुहा – ब्रिटिश कुमायूँ में वन व्यवस्था और वनान्दोलन, पहाड़-2, 1986

5. डी. ब्रान्डिस – मैमोरेंडम आफ द सप्लाई ऑफ रेलवे स्लीपर्स ऑफ द हिमालयन पाइन्स इम्प्रेगनेटेड इन इण्डिया, इण्डियन फारेस्टर, वाल्यूम 4, अप्रैल, 1879

6. जी. एफ. पियर्सन – सब हिमालयन फारेस्ट ऑफ कुमायूँ एण्ड गढ़वाल, स्लैकसन, सीरीज टी, 1869

7. अजीत कुमार सिंह – प्रस्पैक्टिव प्लान फार कन्जर्वेशन, मैनेजमैन्ट एण्ड डैवलपमैन्ट ऑफ लैण्ड रिसोर्सेज फार सेन्ट्रल जोन ऑफ इण्डिया, गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ, 1995

8. योगेश बहुगुणा – हिमालय में महिला नवजागरण, हिमालय निवासी और निसर्ग, वर्ष 4, अंक 6, 1989